Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

वैदिक आर्यों में आचरण की श्रेष्ठता : युगीन आवश्यकता

डॉ. शैलजा रानी अग्निहोत्री
सह–आचार्य संस्कृत, सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर।

Article Info
Volume 5, Issue 2
Page Number : 153-158

Publication Issue :
March-April-2022

Article History
Accepted : 02 March 2022
Published : 20 March 2022

सारांश (Abstract) – वैदिक संहिताओं के अध्ययन–अनुशीलन से वैदिक आर्यजनों की जीवनशैली, उनके चरित्र, आचार–विचार, व्यवहार आदि सभी का प्रामाणिक परिज्ञान होता है। जिसके अनुसार तत्काल में आर्यजन धार्मिक–आध्यात्मिक प्रवृत्ति के तथा शुद्ध–सात्विक और शील–सदाचारवान् होते थे। वैदिक आर्यजन सदैव अपने धर्म, संस्कृति और समस्त लोकसृष्टि के हित, कल्याण, उन्नयन एवं मंगल के लिए प्रयासरत रहते थे एवं अनार्य या दुष्टजनों से सभी की रक्षा करते थे। स्वयं सदैव श्रेष्ठ आचरण करते थे एवं दैवी शक्तियों से दुष्टजनों के अपसारण की प्रार्थना करते थे। वेदमन्त्रों में दिव्य प्राकृतिक शक्तियों से अपना आशीर्वाद सभी श्रेष्ठजनों पर बनाए रखने की कामना–प्रार्थना वैदिक आर्यजनों की श्रेष्ठता की सूचक है। वैदिक आर्य संस्कृति सदाचार प्रधान थी तथा प्रत्येक मानव, जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, अर्थात् समस्त चेतन–अचेतन जीव–जगत् के प्रति उदात्त, पवित्र और कल्याणाकरी भाव आर्यजनों के रहते थे। माता–पिता, गुरु, मातृभूमि, स्वराज्य एवं राष्ट्र या देश, राजा एवं स्वामी इत्यादि सभी के प्रति मान–सम्मान, श्रद्धा–भक्ति और कर्तव्यनिष्ठा एवं परोपकार के भाव आर्यजनों के आचरण की श्रेष्ठता के सूचक हैं। यही कारण है कि वैदिक आर्य संस्कृति हरेक प्रकार से जनकल्याणविधायिनी तथा लोकमंगलकारिणी रही है। वर्तमान युग में लोगों में जनकल्याण एवं समस्त लोक के कल्याण की भावनाएँ तिरोहित हो रही हैं; जिसके वीभत्स परिणाम अनेक रूपों में हमारे समक्ष आ रहे हैं। व्यसनों, दुर्भावनाओं, स्वार्थ आदि के कारण दुराचार बढ़ रहा है। समस्त मानवों, जीव–जन्तुओं, पेड़–पौधों तथा चराचर प्रकृति के प्रति आज का मानव कृतघ्न होता जा रहा है। अतः आज हमें वैदिक युगीन आर्यजनों के श्रेष्ठ आचार–विचार एवं संस्कृति को अपनाने की महती आवश्यकता प्रतीत होती है। वेदों में निहित आर्यजनों के सदाचारी जीवन तथा उनकी श्रेष्ठ संस्कृति को जान–समझकर उसे प्रत्येक जन अपनाए, इस ध्येय को लेकर यह आलेख प्रस्तुत किया गया है।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

संकेताक्षर – वैदिक आर्यजन, वैदिक संस्कृति, श्रेष्ठ आचार–विचार एवं व्यवहार, लोकमंगलकारिणी, चेतन–अचेतन, जीव–जगत्, मातृभूमि, स्वराज्य एवं स्वराष्ट्र, विश्वबन्धुत्व, सदाचार–दुराचार, आर्य–अनार्यजन, विश्ववरेण्य, भद्र भावना, ऋत एवं सत्य।

विषय–प्रस्तुति – वैदिक साहित्य के अध्ययन–पर्यालोचन से वैदिक आर्य संस्कृति की यथार्थ एवं प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध होती है। वेदों में आर्य एवं अनार्यों के उल्लेख मिलते हैं; जिससे ज्ञात होता है कि आर्यजन बहुत ही शिष्ट, सदाचारी, सात्विक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति के होते थे तथा अनार्य जन इससे सर्वथा विपरीत एवं दुष्ट प्रवृत्ति के होते थे। आर्यों–अनार्यों के संघर्ष, युद्ध एवं द्वन्द्व के संकेत एवं स्पष्ट उल्लेख वेदों में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। उनसे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि आर्यजन सदैव धर्म और परोपकार के लिए अनार्यों से संघर्ष कर सर्वजनहित हेतु प्रयासरत रहते थे। यही कारण है कि अपने श्रेष्ठ कार्य–व्यवहार और सदाचार की पराकाष्ठा के कारण 'आर्य' शब्द श्रेष्ठता, उच्चता और सदाचार का प्रतीक बन गया। वेदों में जिस आर्य संस्कृति का चित्रण हुआ है, वह एक नहीं, वरन् अनेक कारणों तथा विशेषताओं के रहते विश्ववरेण्य मानी गई है। धार्मिक–आध्यात्मिक, सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अनेक ऐसे आयाम और उनकी श्रेष्ठता व वैशिष्ट्य वैदिक संस्कृति में दृष्टिगोचर होते हैं, जो किसी भी समाज, राष्ट्र और मानव को सुख–शान्ति, उन्नति और प्रगति के शिखर पर ले जाने में सक्षम हैं। आवश्यकता है मात्र उसकी अनुपालना करने की। वैदिक समाज की वैज्ञानिक एवं तार्किक वर्णव्यवस्था, वैदिक आर्यों द्वारा सम्पादित पंच महायज्ञ की अवधारणा, सोलह संस्कारों की संयोजना, योग–उपासना की पद्धति, पुरुषार्थ चतुष्टय, कर्मण्यता, चार आश्रमों का विभाग, स्वदेश प्रेम, मातृभूमि के प्रति प्रेम, समर्पण और श्रद्धा, राष्ट्रीयता की प्रबल भावना, विश्वबन्धुत्व की आदर्श मैत्रीपूर्ण भावना, नैतिकता की प्रधानता, सदाचार की पराकाष्ठा, सर्वेषां प्रति भद्रभावना, समष्टि हित की कामना –इत्यादि ऐसी अनेकानेक विशेषताएँ तथा आयाम देखे जा सकते हैं, जो वैदिक आर्यजनों में होने के कारण इस समय के समाज और संस्कृति का उत्कर्ष तथा वैशिष्ट्य सूचित करते हैं। यह तत्कालीन आर्यों के व्यक्तित्व तथा चरित्र की श्रेष्ठता का ही परिणाम रहा कि उस समय के समाज में प्रायः सभी लोग सुखी–समृद्ध, सात्विक–निरोग और कर्तव्यपरायण होते थे। वेदों में ऋषियों ने सदैव प्रत्येक मानव, जीव–जन्तु और यहाँ तक कि समस्त चेतन–अचेतन जगत्, सृष्टि और विश्व के कल्याण की कामना की है तथा इस हेतु समस्त प्राकृतिक शक्तियों से प्रार्थनाएँ की हैं एवं उनकी प्रसन्नता हेतु उपासना–आराधना की है। अपने आचार–विचार और व्यवहार से आर्यजनों ने सदैव श्रेष्ठ आदर्श उपस्थित किए हैं। दुष्ट व नकारात्मक शक्तियों के अपसारण और खात्मे की प्रार्थनाएँ भी वैदिक ऋषियों ने की हैं तथा आर्यजनों ने इस हेतु अपनी शक्ति, सामर्थ्य और पौरुष के अनुसार संघर्ष भी किए हैं। यही कारण रहा कि वैदिक आर्य संस्कृति समस्त प्रकार की नकारात्मकताओं, दुराचारों और विषमताओं से मुक्त वह आदर्श, उज्ज्वल और श्रेष्ठ संस्कृति के रूप में सदैव से विश्ववरेण्य तथा प्रशस्त बनी हुई है। वेदों में उल्लेखित वैदिक आर्यजनों की श्रेष्ठता के कारणों तथा इसके सूचक कतिपय स्थलों को

देखें तो उसमें सर्वप्रधान तथा प्रमुख कारण है– ऋत और सत्य का व्यापक सिद्धान्त। इसका अभिप्राय है– समस्त विश्वप्रपंच में व्याप्त नैतिक आधार। मनुष्य के जीवन तथा उसकी समस्त जीवन यात्रा में जो भी प्रेरक, श्रेष्ठ तथा उच्च नैतिकादर्श हैं, उनका सबका आधार सत्य ही है। अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति तथा सभी के प्रति सच्चा और निश्छल बना रहना, यही वास्तविक सत्य है, यही धर्म है और यही संस्कृति का सौन्दर्य है। वेदों में ऋत व सत्य की भावना सर्वत्र व्याप्त है तथा इसकी महिमा का गान अनेक मंत्रों में हुआ है– ऋग्वेद में **"ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति. ..... ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः।।"**[1] कहकर ऋत– सत्य की शक्तियों एवं महिमा का बखान किया है। यजुर्वेद में **"ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च.....।।"**[2] एवं **"ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च.....।।"**[3] तथा **"ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्.....।।"**[4] –इत्यादि विभिन्न मंत्रों में ऋत एवं सत्य की उस शक्ति–सामर्थ्य को तथा उसकी प्राप्ति की कामना को उजागर किया गया है, जिससे सभी जनों का हित व कल्याण सम्भव है और समस्त प्रकार की मलिनताओं व दुराचारों का अपसारण होता है। वैदिक ऋषियों की पुनः–पुनः प्रार्थनाएँ ऋत एवं सत्य की प्राप्त्यर्थ देखी जा सकती हैं।[5] यही हमारी वैदिक संस्कृति और आर्यों के आचरण की श्रेष्ठता का आधार है। जबकि इसके ठीक विपरीत आज का युग वह है, जिसमें ऋत व सत्य की अवहेलना व्यापकरूपेण मानव कर रहा है; परिणामस्वरूप हमारा समाज व संस्कृति अनेकानेक दुराचारों और व्यभिचारों से आक्रान्त होकर दूषित व पतित हो रहे हैं। आज का मानव दुराचारों व पापकर्मों में धड़ल्ले से लिप्त है तथा परकल्याण से उसका कोई सरोकार नहीं; जबकि वेदों में जो संस्कृति और समाज चित्रित है, उसमें मानव की पापकर्मों तथा अधर्म में प्रवृत्ति न होकर सर्वजनकल्याणार्थ प्रवृत्ति देखी जा सकती है।[6] **"विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव।।"**[7] तथा **".....धियो यो नः प्रचोदयात्।।"**[8] इत्यादि वेदमंत्र ऋषियों द्वारा सन्मार्ग की ओर प्रवृत्ति तथा कल्याण की प्राप्ति की हेतु की गई प्रार्थनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। निःसन्देह ऐसी प्रवृत्तियाँ और भावनाएँ आर्य संस्कृति की श्रेष्ठता तथा वर्तमान में ऐसी भावनाओं और आचार–विचार की आवश्यकता को दर्शाते हैं।

वैदिक कालीन समाज में किसी भी प्रकार के निन्दित, अमर्यादित तथा निकृष्ट आचरण–व्यवहार के लिए कोई स्थान नहीं था। यदि कोई किसी भी प्रकार के दुराचार, व्यसन अथवा अमर्यादित कृत्यों में लिप्त होता था, तो उसकी कटु आलोचना की जाती थी तथा उसे सन्मार्ग पर लाने का भरसक प्रयास किया जाता था। ऋग्वेद के अक्ष सूक्त में द्यूतक्रीडा को एक पतित व्यसन बतलाते हुए सर्वथा त्याज्य कहा गया है– **"अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।"**[9] यहाँ जुआरी को कभी भी जुआ न खेलने तथा कृषि जैसे श्रेष्ठ उत्पादक कार्यों को करने का निर्देश वैदिक ऋषि ने दिया है, ताकि अच्छे कार्यों से प्राप्त धन से आजीविका संचालित की जा सके एवं गौ आदि पशुओं, पत्नी, घर–परिवार की प्राप्ति हो, सुख–समृद्धि बनी रहे और संतुष्ट हुआ जा सके। भारतीय संस्कृति त्याग प्रधान होने के कारण वैदिक आर्यजनों में त्याग की प्रबल भावना देखी जा सकती हैं– **"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।"** इस प्रकार त्यागपूर्वक भोग करने के

और किसी के भी द्रव्य या धन पर कुदृष्टि न रखने अथवा उसका अन्याय या बेईमानी पूर्वक हरण न करने के उदात्त विचार सराहनीय हैं।

वैदिक आर्यजन श्रेष्ठ थे; क्योंकि वे समस्त प्रकृति, सृष्टि और तन्निहित चेतन–अचेतन पदार्थों में मित्रभाव रखते थे। कोई किसी भी प्राकृतिक तत्व को क्षति नहीं पहुँचाता था। समस्त विश्व के प्रति बन्धुभाव और शान्ति–समृद्धि की उदात्त भावनाएँ आर्यजनों की रहती थीं। ऋग्वेद में **"पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः"**[10] एवं **"विश्वाहा शर्म यच्छतु"**[11] ; यजुर्वेद में– **"इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।"**[12] तथा **"मित्रस्यमा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि.....।।"**[13] मंत्रों में सभी जीवों–प्राणियों के प्रति कल्याण व मित्रता की भावना व्यक्त की गई है। इनसे आर्यजनों की विश्वबन्धुत्व तथा प्राणीमात्र के प्रति मित्रता और समानता की भावना सूचित होती है। अथर्ववेद के अनेक मंत्र इसी प्रकार आर्यजनों की उदात्त एवं पवित्र भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं– **"ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम्।।"**[14] तथा **"त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव।"**[15] एवं–

"शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि।।"[16]

इत्यादि विभिन्न वेदमन्त्रों में सर्वभौमिक मानव तथा सृष्टि में व्याप्त सभी जीवधारियों के प्रिय, कल्याण और सुख की कामना रखते हुए दिव्य शक्तियों से प्रार्थनाएँ की गई हैं। वैदिक आर्यजन धर्म–कर्म प्रिय होते थे तथा नित्य प्रति के जीवन में विभिन्न धार्मिक–याज्ञिक क्रियाएँ उनकी दिनचर्या का अभिन्न अंग होती थी। पंच महायज्ञों का सम्पादन, पुरुषार्थ चतुष्टय की अनुपालना तो वे करते ही थे, चार आश्रमों की व्यवस्था के तहत आयु व्यतीत करते हुए प्रत्येक आश्रम के अन्तर्गत जीवनयात्रा निर्वाहित करते हुए सात्विक एवं परोपकारी कार्य–व्यवहार सभी के हितार्थ होता था। वैदिक आर्यजन सदैव दया, परोपकार, अहिंसा, सेवा भावना से ओतप्रोत रहकर परकल्याण में प्रवृत्त रहते थे। ऋषि–मुनियों, माता–पिता, गुरु और पूर्वजों के प्रति मान–सम्मान और श्रद्धा का भाव रखते थे[17] तथा उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञ होते थे। **"इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्य पथिकृद्भ्यः।।"**[18] ऋग्वेद के इस मंत्र में पूर्वज ऋषिगणों को नमन किया गया है। यज्ञीय कर्मों द्वारा विभिन्न देवों को प्रसन्न कर सभी पर कृपा बनाए रखने की प्रार्थना वैदिक आर्यजनों की भद्र भावना की सूचक है।

वैदिक आर्यजनों में बहुत से नैतिक मूल्यों को देखा जा सकता है। जिनके रहते वे कभी धर्म, न्याय और सदाचार के मार्ग से भ्रष्ट नहीं होते थे और यदि अज्ञानतावश कोई प्रमाद या अपराध किसी के प्रति हो जाता था, तो वे उसके प्रायश्चित्त हेतु तैयार रहते थे। प्राकृतिक तत्वों, सामाजिक मर्यादा और दैवी अनुशासन के विपरीत जाना अथवा उनकी अवहेलना करना वैदिक आर्यों का लेशमात्र भी स्वभाव नहीं था और यदि कोई ऐसा करता था अथवा ऐसा सोचता था तो आर्यजनों का मानना था कि इस अपराध का दण्ड मनुष्य को अवश्य भोगना पड़ता है। जैसा कि ऋग्वेद के इस मन्त्र में कहा गया है– **"न देवानामति व्रतं शतात्मा च न जीवति। तथा युजा विवावृते।।"**[19]

अर्थात् दैवी अनुशासन की अवहेलना करते हुए कोई शतायु जीवन का लाभ नहीं ले सकता। हमारे जो सहयोगी असमय ही साथ छोड़कर चल देते हैं, उसका कारण भी दैवीसत्ता के अनुशासन की अवज्ञा ही है– इस प्रकार आर्यजन किसी भी अनुचित कार्य से भयभीत रहते थे; इसीलिए सदैव सदाचार–विचारवान बने रहते थे। खान–पान में भी वैदिक आर्यजन पूर्णतः शुद्ध–सात्विक प्रवृत्ति के होते थे और अन्न, फल, शाक भोजन, शुद्ध गोरस–दूध, दही, घृतादि इस प्रकार सात्विक एवं निरामिष भोजन–पेय ही ग्रहण करते थे। वेदों में मद्य–मांसाहार आदि तामसिक पदार्थों का भक्षण करने वाले दुष्टजनों की घोर निन्दा की गई है एवं इसे सर्वथा त्याज्य कहा गया है। क्योंकि खान–पान का मनुष्य के आचरण–व्यवहार पर बहुत प्रभाव पड़ता है; व्यक्ति जैसा भोजन ग्रहण करता है, उसके विचार अथवा मनःसंकल्प भी उसी प्रकार के होते हैं। इसीलिए वैदिक आर्यजनों द्वारा शुद्ध–सात्विक फल, शाक व अन्न भोजन को प्रशस्त बतलाते हुए सेवनीय माना है एवं वे स्वयं इसी प्रकार का आहार–पान ग्रहण करते थे। मांसाहार भक्षण को सबसे बड़ा अधर्म व पाप का कारण मानते थे। यथोक्तम्– **"यन्नीक्षणं माँस्पचन्याऽउखाया या..... .....।।"**[20] समस्त सृष्टि के कल्याणार्थ धर्म–कर्म व यज्ञ–हवन में प्रवृत्त रहना उनकी प्रतिदिन की दिनचर्या का अभिन्न अंग होता था। प्राकृतिक शक्तियों को वे अपनी प्रार्थनाओं व यज्ञक्रियाओं से सभी के लिए अनुकूल व कल्याणकारी बनाए रखने का भरपूर प्रयास करते थे। इस प्रकार वेदों में आर्यजनों की श्रेष्ठता और उनका सदाचार–व्यवहार अनेकशः परिलक्षित हुआ है।

उपसंहार – वैदिक साहित्य के अध्ययन और पर्यवेक्षण द्वारा यह बात भलीभाँति ज्ञात होती है कि तत्कालीन आर्यजन आचार–विचार–व्यवहार में अतिश्रेष्ठ होते थे। सदाचार की पराकाष्ठा उनमें अनेकशः देखी गई है। यही कारण है कि तत्कालीन वैदिक संस्कृति उच्च मानवीय मूल्यों तथा नैतिक आदर्शों से युक्त है। परन्तु वर्तमान का युग उच्च मानवीय मूल्यों और नैतिकादर्शों के पतन का युग बन चुका है। वर्तमान मानवों में धर्म–अध्यात्म तथा सदाचार–व्यवहार का लोप होता जा रहा है। परिणामस्वरूप हमारा समाज और संस्कृति भी दूषित, पतित एवं विकृत हो रहे हैं तथा स्वार्थ की भावना प्रबल होती जा रही है और परमार्थ व लोकमंगल की भद्र भावनाओं का भी ह्रास हो रहा है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति दुःख, शोक व पीड़ा से त्रस्त है। ऐसे विषम तथा स्वार्थान्ध युग में हमारे समाज व संस्कृति के गौरव को पुनर्जीवित करने हेतु वैदिक आर्यजनों के सदाचार प्रधान जीवन तथा उनके उदात्त भाव–विचारों को अपनाना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। अतः वेदों में चित्रित आर्यजनों के श्रेष्ठ जीवन तथा आचार–विचार व व्यवहार को आत्मसात् करके जन–जन को उसे सिद्धान्त एवं व्यवहार में चरितार्थ करना होगा, तभी हमारी स्वस्थ, उन्नत और जगमंगलकारी विश्ववरेण्य संस्कृति तथा विश्वबन्धुत्व वाले आदर्श समाज की संकल्पना साकार हो सकेगी।

संदर्भ सूची –

1. ऋग्वेद : वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा एवं भगवती देवी शर्मा, प्रकाशक – ब्रह्म वर्चस्व शान्तिकुञ्ज हरिद्वार, संवत् 2053, 4/23/8–9
2. यजुर्वेद : सम्पादक एवं प्रकाशक – उपर्युक्त, 17/82

3. यजुर्वेद, 17/83
4. अथर्ववेद : सम्पादक एवं प्रकाशक – उपर्युक्त, 17/1/16
5. यजुर्वेद, 18/5, 19/30, 77, 20/11–12, 39/4
6. ऋग्वेद, 6/75/10 –"पूषा नः पातु दुरिताद् ऋतावृधो रक्षामाकिर्नो अद्यशंस ईशत।।"
7. यजुर्वेद, 30/3
8. यजुर्वेद, 30/2
9. ऋग्वेद, 10/34/12
10. ऋग्वेद, 6/75/14
11. ऋग्वेद, 10/75/17
12. यजुर्वेद, 36/8
13. यजुर्वेद, 36/18
14. अथर्ववेद, 17/1/2
15. अथर्ववेद, 17/1/10
16. अथर्ववेद, 3/28/3
17. ऋग्वेद, 2/33/12 –"कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्। भूरे र्दातारं सत्पतिं.....।।"
18. ऋगवेद, 10/14/15
19. वही, 10/33/9
20. यजुर्वेद, 25/36